जैन मूर्तिकला की परम्परा

□ **डॉ० मारुतिनन्दन प्रसाद तिवारी**
प्राध्यापक, कला-इतिहास विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी—२२१००५ (उ० प्र०)

जैन धर्म में मूर्तिनिर्माण एवं पूजन की परम्परा कब से प्रारम्भ हुई, इसका निश्चित निर्धारण कठिन है। प्रस्तुत लेख में हम उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर मुख्यतः इसी समस्या पर विचार करेंगे और किसी तार्किक निष्कर्ष पर पहुँचने का प्रयास करेंगे।

महावीर से पूर्व तीर्थंकर (या जिन) मूर्तियों के अस्तित्व का कोई भी साहित्यिक या पुरातात्त्विक साक्ष्य उपलब्ध नहीं है। जैन ग्रन्थों में महावीर की यात्रा के सन्दर्भ में उनके किसी जैन मन्दिर में जाने या जिन-मूर्ति के पूजन का अनुल्लेख है। इसके विपरीत यक्ष-आयतनों एवं यक्ष-चैत्यों (पूर्णभद्र और मणिभद्र) में उनके विश्राम करने के उल्लेख प्राप्त होते हैं।[1]

जैन धर्म में मूर्तिपूजन की प्राचीनता से संबद्ध सबसे महत्त्वपूर्ण वह उल्लेख है जिसमें महावीर के जीवनकाल में ही उनकी मूर्ति के निर्माण का उल्लेख है। साहित्यिक परम्परा से ज्ञात होता है कि महावीर के जीवनकाल में ही उनकी चन्दन की एक प्रतिमा का निर्माण किया गया था। इस मूर्ति में महावीर को दीक्षा लेने के लगभग एक वर्ष पूर्व राजकुमार के रूप में अपने महल में ही तपस्या करते हुए अंकित किया गया है। चूँकि यह प्रतिमा महावीर के जीवनकाल में ही निर्मित हुई, अतः उसे जीवन्त स्वामी या जीवित स्वामी संज्ञा दी गई। साहित्य और शिल्प दोनों ही में जीवन्तस्वामी को मुकुट, हार एवं मेखला आदि अलंकरणों से युक्त एक राजकुमार के रूप में निरूपित किया गया है। महावीर के समय के बाद की भी ऐसी मूर्तियों के लिए जीवन्तस्वामी शब्द का ही प्रयोग होता रहा।

जीवन्तस्वामी मूर्तियों को सर्वप्रथम प्रकाश में लाने का श्रेय यू० पी० शाह को है।[2] साहित्यिक परम्परा को विश्वसनीय मानते हुए शाह ने महावीर के जीवनकाल से ही जीवन्तस्वामी मूर्ति की परम्परा को स्वीकार किया है।[3] उन्होंने साहित्यिक परम्परा की पुष्टि में अकोटा (बडौदा, गुजरात) से प्राप्त जीवन्तस्वामी की दो गुप्तकालीन कांस्य

---

१. शाह, यू० पी०, बिगिनिंग्स आव जैन आइकानोग्राफी, संग्रहालय पुरातत्त्व पत्रिका, लखनऊ, अंक ९, जून, १९६२, पृ० २.

२ द्रष्टव्य-शाह, यू० पी०, ए यूनीक जैन इमेज आव जीवन्तस्वामी, जर्नल ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट आव बड़ौदा, खं० १, अं० १, सितम्बर १९५१(१९५२), पृ० ६२-६९; साइड लाइट्स आन दि लाईफ-टाइम सेण्डलवुड इमेज आव महावीर, जर्नल ओरिण्यटल इन्स्टीट्यूट आव बड़ौदा, खं० १, अं ४, जून १९५२, पृ० ३५८-६८; श्री जीवन्तस्वामी (गुजराती), जैन सत्यप्रकाश, वर्ष १७, अं० ५-६, १९५२, पृ० ९८-१०९; अकोटा ब्रोन्जेज बम्बई, १९५९ पृ० २६-२८.

३ शाह, यू० पी०, श्री जीवन्तस्वामी, जैन सत्यप्रकाश, वर्ष १७, अं० ५-६, पृ० १०४.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रतिमाओं का भी उल्लेख किया है।[1] इन प्रतिमाओं में जीवन्तस्वामी को कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़ा और वस्त्राभूषणों (मुकुट, हार, मेखला, वनमाला, बाजूबन्द आदि) से सज्जित दर्शाया गया है। पहली मूर्ति ल० पाँचवीं शती ई० की है और दूसरी लेखयुक्त मूर्ति ल० छठी शती ई० की है। दूसरी मूर्ति के लेख में जीवन्तस्वामी खुदा है।[2]

उपर्युक्त मूर्तियों के बाद भी जीवन्तस्वामी मूर्तियों के निर्माण का क्रम चलता रहा। यह उल्लेख केवल श्वेताम्बर परम्परा में हुआ है और जीवन्तस्वामी मूर्तियां भी केवल श्वेताम्बर स्थलों से ही मिली हैं। संभवतः जीवन्तस्वामी के वस्त्राभूषणों से युक्त होने के कारण ही दिगम्बर परम्परा में इनका अनुल्लेख है। दसवीं से बारहवीं शती ई० के मध्य की अधिकांश जीवन्तस्वामी-मूर्तियाँ राजस्थान के श्वेताम्बर स्थलों से मिली हैं।[3] ये मूर्तियाँ राजस्थान के जोधपुर जिले में ओसियां और सेवणी स्थित जैन मन्दिरों पर उत्कीर्ण हैं (देखें चित्र)। बारहवीं शती ई० की एक मनोज्ञ मूर्ति सरदार संग्रहालय, जोधपुर में है। प्रतिमालक्षण की दृष्टि से जीवन्तस्वामी की सर्वाधिक महत्वपूर्ण मूर्तियाँ ओसियां और सरदार संग्रहालय, जोधपुर (११वीं-१२वीं शती ई०) की हैं। इन मूर्तियों में जीवन्तस्वामी के साथ तीर्थंकर मूर्तियों की कई विशेषताएँ प्रदर्शित हैं। इन मूर्तियों में जीवन्तस्वामी के साथ अष्टप्रातिहार्य (चामरधर सेवक, त्रिछत्र, भामण्डल, देवदुन्दुभि, सुरपुष्पवृष्टि आदि),[4] यथा—पक्षी युगल, महाविद्याएँ एवं जिन-आकृतियां निरूपित हैं, जो मध्ययुगीन जिन-मूर्तियों की सामान्य विशेषताएँ रही हैं।

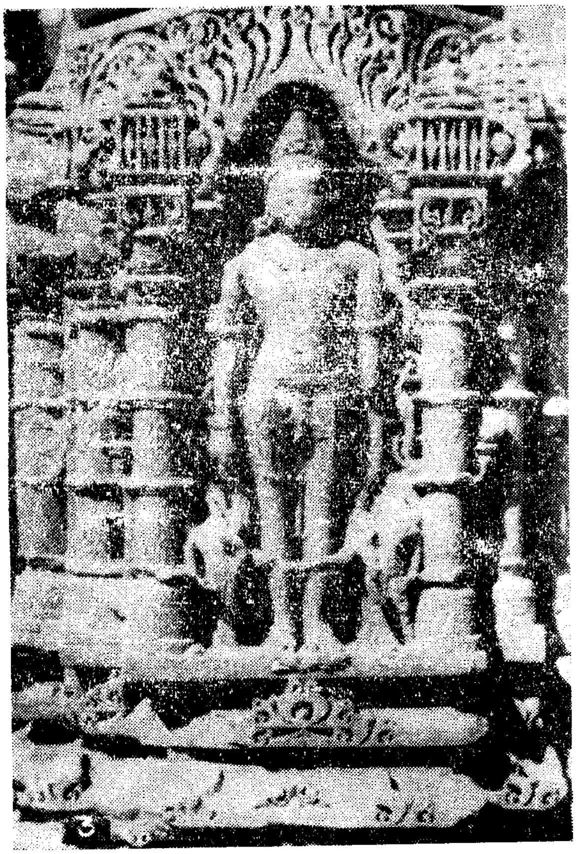

ओसियाँ (राजस्थान) के महावीर मन्दिर के तोरण (१०१८ ई०) की जीवन्तस्वामी महावीर की मूर्ति

जैन धर्म में मूर्ति-निर्माण एवं पूजन की प्राचीनता के निर्धारण के लिए जीवन्तस्वामी मूर्ति की परम्परा की प्राचीनता का निर्धारण अपेक्षित है। आगम-साहित्य एवं कल्पसूत्र जैसे प्रारम्भिक ग्रन्थों में जीवन्तस्वामी मूर्ति का उल्लेख नहीं प्राप्त होता है। जीवन्तस्वामी

१ शाह, यू०पी०, ए यूनीक जैन इमेज आव जीवन्तस्वामी, जर्नल ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा, खं० १, अं० १, पृ० ७६.

२ शाह, यू० पी०, अकोटा ब्रोन्जेज, पृ० २६-२८, फलक ८६, बी, १२६.

३ द्रष्टव्य—अग्रवाल, आर० सी०, ए यूनीक इमेज आव जीवन्तस्वामी फ्राम राजस्थान, ब्रह्मविद्या, अड्यार, खं० २२, अं० १-२, पृ० ३२-३४; तिवारी मारुतिनन्दन प्रसाद, ओसियां से प्राप्त जीवन्तस्वामी की अप्रकाशित मूर्तियां, विश्वभारती, खं० १४, अं० ३, अक्टूबर-दिसम्बर, १६७३, पृ० २१५-१८.

४ अष्टप्रातिहार्यों में केवल सिंहासन को नहीं प्रदर्शित किया गया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मूर्ति के प्राचीनतम उल्लेख आगम ग्रन्थों से सम्बन्धित छठीं शती ई० के बाद की उत्तरकालीन रचनाओं, यथा— निर्युक्तियों, भाष्यों, चूर्णियों आदि में ही प्राप्त होते हैं।[1] इन ग्रन्थों से कौशल, उज्जैन, दशपुर (मंदसौर), विदिशा, पुरी एवं वीतभयपट्टन में जीवन्तस्वामी मूर्तियों की विद्यमानता की सूचना प्राप्त होती है।[2]

जीवन्तस्वामी मूर्ति का उल्लेख सर्वप्रथम वाचक संघदासगणि कृत वसुदेवहिण्डी (६१० ई० या लगभग एक या दो शताब्दी पूर्व की कृति)[3] में प्राप्त होता है। ग्रन्थ में आर्या सुव्रता नाम की एक गणिनी के जीवन्तस्वामी मूर्ति के पूजनार्थ उज्जैन जाने का उल्लेख है।[4] जिनदास कृत आवश्यकचूर्णि (६७६ ई०) में जीवन्तस्वामी की प्रथम मूर्ति की कथा प्राप्त होती है। इसमें अच्युत इन्द्र द्वारा पूर्वजन्म के मित्र विद्युन्माली को महावीर की मूर्ति के पूजन की सलाह देने, विद्युन्माली के गोशीर्ष चन्दन की मूर्ति बनाने एवं प्रतिष्ठा करने, विद्युन्माली के पास से मूर्ति एक वणिक के हाथ लगने, कालान्तर में महावीर के समकालीन सिन्धु-सौवीर में वीतभयपत्तन के शासक उदायन एवं उसकी रानी प्रभावती द्वारा उसी मूर्ति के वणिक् से प्राप्त करने एवं रानी प्रभावती द्वारा मूर्ति की भक्ति भाव से पूजा करने का उल्लेख है। यही कथा हरिभद्रसूरि की आवश्यकवृत्ति में भी वर्णित है।

इसी कथा का उल्लेख हेमचन्द्र (११६९-७२ ई०) ने त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र (पर्व १०, सर्ग ११) में कुछ नवीन तथ्यों के साथ किया है। हेमचन्द्र ने स्वयं महावीर के मुख से जीवन्तस्वामी मूर्ति के निर्माण का उल्लेख कराते हुए लिखा है कि क्षत्रियकुण्ड ग्राम में दीक्षा लेने के पूर्व छद्मस्थ काल में महावीर का दर्शन विद्युन्माली ने किया था। उस समय उनके आभूषणों से सुसज्जित होने के कारण ही विद्युन्माली ने महावीर की अलंकरणयुक्त प्रतिमा का निर्माण किया।[5] अन्य स्रोतों से भी ज्ञात होता है कि दीक्षा लेने का विचार होते हुए भी अपने ज्येष्ठ भ्राता के आग्रह के कारण महावीर को कुछ समय महल में ही धर्म-ध्यान में समय व्यतीत करना पड़ा था। हेमचन्द्र के अनुसार विद्युन्माली द्वारा निर्मित मूल प्रतिमा विदिशा में थी। हेमचन्द्र ने यह भी उल्लेख किया है कि चौलुक्य शासक कुमारपाल ने वीतभयपट्टन में उत्खनन करवाकर जीवन्तस्वामी की प्रतिमा प्राप्त की थी। जीवन्तस्वामी मूर्ति के लक्षणों का उल्लेख हेमचन्द्र के अतिरिक्त अन्य किसी भी जैन आचार्य ने नहीं किया है। क्षमाश्रमण संघदास रचित बृहत्कल्पभाष्य के भाष्य गाथा २७५३ पर टीका करते हुए क्षेमकीर्ति (१२७५ ई०) ने लिखा है कि मौर्य शासक संप्रति को जैन धर्म में दीक्षित करने वाले आर्य सुहस्ति जीवन्तस्वामी मूर्ति के पूजनार्थ उज्जैन गये थे।

सम्पूर्ण अध्ययन से स्पष्ट है कि पांचवीं-छठी शती ई० के पूर्व जीवन्तस्वामी के सम्बन्ध में हमें किसी प्रकार की ऐतिहासिक सूचना नहीं प्राप्त होती है। उपलब्ध साहित्यिक (वसुदेवहिण्डी) एवं पुरातात्विक (अकोटा से मिली जीवन्तस्वामी मूर्तियाँ) साक्ष्य पाँचवीं-छठीं शती ई० के ही हैं। इस सन्दर्भ में महावीर के गणधरों द्वारा रचित आगम साहित्य में जीवन्तस्वामी मूर्ति के उल्लेख का पूर्ण अभाव जीवन्तस्वामी मूर्ति की धारणा की परवर्ती ग्रन्थों द्वारा प्रतिपादित महावीर की समकालिकता पर एक स्वाभाविक सन्देह उत्पन्न करता है। कल्पसूत्र एवं ई० पू० के अन्य ग्रन्थों में भी जीवन्तस्वामी मूर्ति का अनुल्लेख इसी सन्देह की पुष्टि करता है। वर्तमान स्थिति में जीवन्तस्वामी मूर्ति की धारणा को महावीर के समय तक (छठी शती ई० पू०) ले जाने का हमारे पास कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं है।

---

१ जैन, हीरालाल, भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान, भोपाल, १९६२, पृ० ९२.

२ द्रष्टव्य, जैन जे० सी०, लाईफ इन ऐन्शण्ट इण्डिया : ऐज डेपिक्टेड इन दि जैन केननस, बम्बई, १९४७, पृ० २५२, ३००, ३२५.

३ द्रष्टव्य— शाह, यू० पी०, श्री जीवन्तस्वामी, जैन सत्यप्रकाश, वर्ष १७, अंक ५-६, पृ० ९८.

४ वसुदेवहिण्डी (संघदास कृत), खं० १, सं० मुनि श्री पुण्यविजय, आत्मानन्द जैन ग्रन्थमाला ८०, भावनगर, १९३०, भाग १, पृ० ६१.

५ त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र, १०-११,३७९-८०.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विभिन्न साहित्यिक एवं पुरातात्त्विक साक्ष्यों ज्ञात होता है कि मौर्यकाल (चौथी-तीसरी शती ई० पू०) में जैन मूर्तियों का निर्माण निश्चित रूप से प्रारम्भ हो गया था। जैन परम्परा के अनुसार जैन धर्म को लगभग सभी समर्थ मौर्य शासकों का समर्थन प्राप्त था। चन्द्रगुप्त मौर्य का जैन धर्मानुयायी होना तथा जीवन के अन्तिम वर्षों में भद्रबाहु के साथ दक्षिण भारत जाना सुविदित है।[1] कौटिल्य के अर्थशास्त्र में जयन्त, वैजयन्त, अपराजित एवं अन्य जैन देवों की मूर्तियों का उल्लेख है।[2] अशोक बौद्ध धर्मानुयायी होते हुए भी जैन धर्म के प्रति उदार था। उसने निर्ग्रन्थों एवं आजीविकों को दान दिये थे।[3] सम्प्रति को भी जैन धर्म का अनुयायी कहा गया है।[4] किन्तु मौर्य शासकों से संबद्ध इन परम्पराओं के विपरीत पुरातात्त्विक साक्ष्य के रूप में लोहानीपुर से प्राप्त केवल एक जिन मूर्ति ही, है, जिसे मौर्य युग का माना जा सकता है।

पटना के समीप लोहानीपुर से मिली मौर्यकालीन मूर्ति जिन-मूर्ति का प्राचीनतम ज्ञात उदाहरण है।[5] यह मूर्ति सम्प्रति पटना संग्रहालय में सुरक्षित है। मौर्ययुगीन चमकदार आलेप से युक्त ल० तीसरी शती ई० पू० की इस मूर्ति के सिर, भुजा और जानु के नीचे का भाग खण्डित है। मूर्ति की नग्नता और कायोत्सर्ग मुद्रा इसके जिनमूर्ति होने की सूचना देते हैं। कायोत्सर्ग मुद्रा में जिन समभंग में सीधे खड़े होते हैं और उनकी दोनों भुजाएँ लंबवत् घुटनों तक प्रसारित होती हैं। ज्ञातव्य है कि यह मुद्रा केवल जैन तीर्थंकरों के मूर्त अंकन में ही प्रयुक्त हुई है। लोहानीपुर के उत्खनन में प्राप्त होने वाली मौर्ययुगीन ईंटें एवं एक रजत आर्हतमुद्रा भी उपर्युक्त मूर्ति के मौर्यकालीन होने के समर्थक साक्ष्य हैं। इस मूर्ति के निरूपण में यक्ष मूर्तियों का प्रभाव दृष्टिगत होता है। यक्षमूर्तियों की तुलना में मूर्ति की शरीर रचना में भारीपन के स्थान पर सन्तुलन है, जिसे जैन धर्म में योग के विशेष महत्व का परिणाम स्वीकार किया जा सकता है। शरीर रचना में प्राप्त सन्तुलन मूर्ति के मौर्ययुग के उपरान्त निर्मित होने का[6] नहीं वरन् उसके तीर्थंकर मूर्ति होने का सूचक है। मौर्य शासकों द्वारा जैन धर्म को समर्थन प्रदान करना और अर्थशास्त्र एवं कलिंग शासक खारवेल (ल० पहली शती ई० पू०) के लेख के उल्लेख लोहानीपुर मूर्ति के मौर्ययुगीन मानने के अनुमोदक तथ्य हैं। खारवेल के लेख में उल्लेख है कि कलिंग की जिस जिन प्रतिमा को नन्दराज 'तिवससत' वर्ष पूर्व कलिंग से मगध ले गया था, उसे खारवेल पुनः वापस ले आया। 'तिवससत' शब्द का अर्थ अधिकांश विद्वान् ३०० वर्ष मानते हैं।[7] इस प्रकार लेख के आधार पर भी जिन-मूर्ति की प्राचीनता मौर्यकाल (ल० चौथी-तीसरी शती ई० पू०) तक जाती है। शुंग-कुषाण एवं बाद के युगों में जिन-मूर्तियों का क्रमशः विकास होता गया और उनमें नवीन विशेषताएँ जुड़ती चली गयीं।

लोहानीपुर जिन-मूर्ति के बाद की दूसरी जिन-मूर्ति ल० पहली शती ई० पू० की है। मस्तक पर सर्पफणों के छत्र से युक्त यह पार्श्वनाथ मूर्ति प्रिंस आव वेल्स संग्रहालय, बम्बई में संग्रहीत है। पार्श्वनाथ निर्वस्त्र हैं और कायोत्सर्ग

---

१ द्रष्टव्य—मुखर्जी, आर० के०, चन्द्रगुप्त मौर्य एण्ड हिज टाइम्स, दिल्ली, १९६६ (पु० मु०), पृ० ३९-४१.

२ भट्टाचार्य, बी० सी०, दि जैन आइकानोग्राफी, लाहौर, १९३९, पृ० ३३.

३ द्रष्टव्य—थापर रोमिला, अशोक एन्ड दि डिक्लाइन आव दि मौर्याज, आक्सफोर्ड, १९६३ (पु० मु०), पृ० १३९-८१ मुखर्जी, आर० के०, अशोक, दिल्ली, १९७४, पृ० ५४-५५.

४ परिशिष्टपर्वन ९.५४; द्रष्टव्य—थापर रोमिला, पूर्वनिर्दिष्ट, पृ० १८७.

५ जायसवाल, के० पी०, जैन इमेज आव मौर्य पिरियड, जर्नल बिहार, उड़ीसा रिसर्च सोसायटी, खं० २३, भाग १, १९३७, पृ० १३०-३२.

६ रे, निहाररंजन, मौर्य एण्ड शुंग आर्ट, कलकत्ता, १९६५, पृ० १५५.

७ सरकार, डी० सी०, सेलेक्ट इन्स्क्रिप्शनस, खं० १, कलकत्ता, १९६५, पृ० २१५, पादटिप्पणी ६.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुद्रा में खड़े हैं।[1] ल० पहली शती ई० पू० की ही पार्श्वनाथ की एक अन्य मूर्ति बक्सर (भोजपुर, बिहार) के चौसा ग्राम से भी मिली है, जो सम्प्रति पटना संग्रहालय (क्रमांक ६५३१) में सुरक्षित है।[2] इस मूर्ति में पार्श्वनाथ सात सर्पफणों के छत्र से शोभित हैं और उपर्युक्त मूर्ति के समान ही निर्वस्त्र और कायोत्सर्ग मुद्रा में हैं। इन प्रारम्भिक मूर्तियों में वक्षःस्थल में श्रीवत्स चिन्ह नहीं उत्कीर्ण है, जो जिन-मूर्तियों की अभिन्न विशेषता रही है। श्रीवत्स चिन्ह का उत्कीर्णन सर्वप्रथम ल० पहली शती ई० पू० में मथुरा की जिन-मूर्तियों में प्रारम्भ हुआ। ये मूर्तियां आयागपटों पर उत्कीर्ण हैं। लगभग इसी समय मथुरा में ही सर्वप्रथम जिनों के निरूपण में ध्यानमुद्रा प्रदर्शित हुई।

जैन कला को सर्वप्रथम पूर्ण अभिव्यक्ति मथुरा में मिली। यहाँ की शुंग-कुषाण काल की जैन मूर्तियाँ जैन प्रतिमाविज्ञान के विकास की प्रारम्भिक अवस्था को दरशाती हैं। साहित्यक और आभिलेखिक साक्ष्यों से ज्ञान होता है कि मथुरा का कंकाली टीला एक प्राचीन जैन स्तूप था। कंकाली टीले से एक विशाल जैन स्तूप के अवशेष और विपुल शिल्प सामग्री मिली है। यह शिल्प सामग्री ल० ई० पू० १५० से १०२३ ई० के मध्य की है। इस प्रकार मथुरा की जैन मूर्तियाँ आरम्भ से मध्ययुग तक के प्रतिमाविज्ञान की विकास शृंखला उपस्थित करती हैं। मथुरा की शिल्प सामग्री में आयागपट, स्वतन्त्र जिन-मूर्तियाँ, जिन चौमुखी (या सर्वतोभद्रिका) प्रतिमा, जिनों के जीवन से सम्बन्धित दृश्य एवं कुछ अन्य मूर्तियाँ प्रमुख हैं।

कुषाण काल में जिनों के साथ प्रतिहार्यों का चित्रण प्रारम्भ हो गया, पर आठ प्रारम्भिक प्रतिहार्यों का अंकन गुप्त काल के अन्त में ही प्रारम्भ हुआ। प्रतिमा लक्षण के विकास की दृष्टि से गुप्तकाल (ल० २७५-५५० ई०) का विशेष महत्व रहा है। जिनों के साथ लांछनों एवं यक्ष-यक्षी युगलों का निरूपण गुप्तकाल में ही प्रारम्भ हुआ। राजगिरि (बिहार) की नेमिनाथ एवं भारत कला भवन, वाराणसी (क्रमांक १६१) की महावीर मूर्तियों में सर्वप्रथम लांछन (शंख और सिंह) और अकोटा (गुजरात) की ऋषभनाथ मूर्ति में यक्ष-यक्षी युगल निरूपित हुए।

□

---

१ द्रष्टव्य—शाह, यू० पी०, स्टडीज इन जैन आर्ट, बनारस, १९५५, पृ० ८-९, एन अर्ली ब्रोन्स इमेज आव पार्श्वनाथ इन दि प्रिंस आव वेल्स म्युजियम, बम्बई, बुलेटिन प्रिन्स आव वेल्स म्युजियम आव वेस्टर्न इण्डिया, अं० ३, १९५२-५३, पृ० ६३-६५.

२ द्रष्टव्य—प्रसाद, एच० के०, जैन ब्रोन्जेज इन दि पटना म्यूजियम, महावीर जैन विद्यालय गोल्डन जुबली वाल्यूम, बम्बई, १९६८, पृ० २७५-८०; शाह, यू० पी०, अकोटा ब्रोन्जेज, फलक, १ बी.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org